

पाठ्यक्रम - २०

२०अ

१४८ कर्म प्रकृतियाँ और उनका फल

संसार में अनेक प्रकार के सुख-दुःख में कारणभूत कर्म कहे गये हैं। वे कर्म आठ होते हैं— १. ज्ञानावरण, २. दर्शनावरण, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र और ८. अन्तराय। इन कर्मों का स्वभाव, फल, कर्म बंध के कारण इत्यादि का सामान्य कथन पूर्व में किया जा चुका है अब इन कर्मों के भेद-प्रभेद का कथन करते हैं।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को घातिया एवं अघातिया की अपेक्षा दो भागों में विभक्त किया गया है। जो आत्मा के ज्ञान-दर्शनादि गुणों का घात करते हैं ऐसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय एवं अन्तराय कर्मों की घातिया कर्म संज्ञा है। तथा जो आत्मा के गुणों का घात तो नहीं करते किन्तु आत्मा के रूप को अन्य रूप (शरीरादि आकार) कर देते हैं ऐसे वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म की अघातिया कर्म संज्ञा है।

ज्ञानावरणीय कर्म के पाँच, दर्शनावरणीय कर्म के नौ, मोहनीय कर्म के अट्टाइस, वेदनीय कर्म के दो, आयु कर्म के चार, नाम कर्म के ब्यालीस, गोत्र कर्म के दो एवं अंतराय कर्म के पाँच भेद हैं। अतः आठ कर्मों के कुल प्रभेद $5+9+28+2+4+42+2+5 = 97$ हो जाते हैं।

1. ज्ञानावरण कर्म के पाँच भेद- मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मनः पर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण हैं। ये कर्म क्रमशः मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय एवं केवलज्ञान को आवृत करते हैं, ढाक देते हैं अर्थात् ज्ञान होने नहीं देते। प्रथम चार कर्म ज्ञान को पूरा नहीं ढकते जबकि केवलज्ञानावरण, केवलज्ञान को पूर्ण रूप से ढक लेता है।

अभ्यव्य जीव के भी मनः पर्यय ज्ञान एवं केवलज्ञान शक्ति रूप में रहता है अतः उसके भी इनका आवरण पाया जाता है।

2. दर्शनावरण कर्म के नौ भेद - चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यान्तर्द्धि है। यद्यपि आवरण कर्म प्रथम चार हैं। फिर भी निद्रा आदि पाँच दर्शनोपयोग में बाधक बनते हैं अतः इनकी भी दर्शनावरण में गणना करने से नौ भेद कहे।

नेत्र इन्द्रिय को चक्षु कहते हैं इसके अलावा शेष चार इन्द्रिय व मन को अचक्षु कहते हैं। जो चक्षुज्ञान, अचक्षुज्ञान तथा अवधिज्ञान के पूर्व होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे ऐसे कर्म को क्रमशः चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण एवं अवधि दर्शनावरण कर्म कहते हैं। जो केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे उसे केवल दर्शनावरण कहते हैं।

मद, खेद और परिश्रम जन्य थकावट को दूर करने के लिए नींद लेना निद्रा है, निद्रावान पुरुष सुख पूर्वक जागृत हो जाता है। निद्रा पर पुनः-पुनः निद्रा लेना अथवा गहरी नींद लेना, बार बार उठाने पर बहुत कठिनता से जाग पाना निद्रा-निद्रा कर्म है। बैठे-बैठे सो जाना, कुछ जागृत रहना, नेत्र और शरीर में विकार लाने वाली ऐसी क्रिया जो आत्मा को चलायमान कर दे प्रचला

सम्यग्ज्ञान

जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में बोध कराने वाला ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

अन्यूनमनतिरिक्तं यथातथ्यं विना च विपरीतात् ।
निसंदेहं वेदं यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥ ४२ ॥

अर्थ : जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को न्यूनता रहित, अधिकता रहित, विपरीतता रहित, संदेह रहित, जैसा का तैसा जानता है उस ज्ञान को श्रुतकेवली सम्यग्ज्ञान कहते हैं। ८० को ८५ मानना यह है अधिक ज्ञान।

१६ X ५ जाने कितने होते हैं यह अनध्यवसाय ज्ञान।

८० को ७५ जानना यह है न्यून ज्ञान।

१६ X ५ = ९० होते हैं यह है विपरीत ज्ञान।

१६ X ५ न जाने कितने ८० होते हैं या ९० यह है संशय ज्ञान

१६ X ५ = ८० होते हैं यह है सम्यग्ज्ञान।

इसी प्रकार से आत्मा को आत्मा और शरीर को भी आत्मा मानना अधिक ज्ञान।

न जाने आत्मा क्या है- अनध्यवसाय।

मनुष्य पर्याय मात्र ही आत्मा है- न्यून ज्ञान।

शरीर को आत्मा जानना- विपरीत ज्ञान।

आत्मा शरीर है या इससे भिन्न है पता नहीं- संशय ज्ञान।

आत्मा को शरीर से भिन्न मानना- सम्यग्ज्ञान।

है। प्रचला की पुनः-पुनः आवृत्ति प्रचला-प्रचला है मुंह से लार बहने लगना, हाथ-पैर चलने लगना इस प्रचला-प्रचला के लक्षण है। जिसके निमित्त से जीव सोते समय भयंकर कार्य कर ले, शक्ति विशेष प्रगट हो जाए और जागने पर कुछ स्मरण न रहे स्त्यानृद्धि कर्म है।

3. वेदनीय कर्म के दो भेद - सातावेदनीय और असातावेदनीय हैं। जिस कर्म के उदय से देवादि गतियों में शरीर और मन सम्बन्धी सुख की प्राप्ति होती है उसे सातावेदनीय कर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय से शारीरिक-मानसिक अनेक प्रकार के दुःख प्राप्त होते हैं वह असातावेदनीय कर्म है।

4. मोहनीय के अद्वाईस भेद - अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ ये सोलह कषाय, हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा पुरुष वेद-स्त्री वेद - नपुंसक वेद ये नौ नोकषाय एवं मिथ्यात्व-सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये तीन - कुल अद्वाईस हैं।

० जो कषाय सम्यक्त्व को घातती है अथवा अनन्त मिथ्यात्व के साथ जिसका अनुबन्ध-सम्बन्ध हो उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं। जो अप्रत्याख्यान - एक देश चारित्र को प्रकट न होने दे उसे अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं। जो प्रत्याख्यान - सकल चारित्र का घात करे उसे प्रत्याख्यानावरण कहते हैं एवं जो यथाख्यात चारित्र को प्रकट न होने दे तथा संयम के साथ प्रकाश मान रहे उसे संज्वलन कहते हैं। प्रत्येक के क्रोध-मान-माया-लोभ ये चार-चार भेद हैं कुल ये सोलह कषाय आत्मा को निरन्तर कषती रहती हैं - दुःखी करती रहती हैं इसलिए इन्हे कषाय वेदनीय भी कहते हैं।

० जिसके उदय से हँसी आवे, उसे हास्य कहते हैं। जिसके उदय से स्त्री-पुत्र आदि में प्रीति रूप परिणाम होता है उसे रति कहते हैं। जिसके उदय से शत्रु आदि अनिष्ट पदार्थों में अप्रीति रूप परिणाम होते हैं उसे अरति कहते हैं। जिसके उदय से इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग में खेद रूप परिणाम होते हैं उसे शोक कहते हैं। जिसके उदय से भय रूप परिणाम होते हैं उसे भय कहते हैं। जिसके उदय से ग्लानि रूप परिणाम होता है उसे जुगुप्सा कहते हैं। जिसके उदय से स्त्री से रमने के भाव होते हैं उसे पुरुषवेद कहते हैं। जिसके उदय से पुरुष से रमने के भाव होते हैं उसे स्त्रीवेद कहते हैं। जिसके उदय से स्त्री तथा पुरुष दोनों से रमने के भाव हों उसे नपुंसक वेद कहते हैं।

० जिसके उदय से जीव की अत्तत्व श्रद्धान रूप परिणति होती है उसे मिथ्यात्व कहते हैं। जिसके उदय से मिथ्यात्व और सम्यक्त्व के मिश्रित परिणाम होते हैं उसे सम्यक् मिथ्यात्व कहते हैं। जिसके उदय से क्षायोपशमिक सम्पर्दर्शन में चल, मलिन और अवगाढ़ दोष लगते हैं उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं।

० सब तीर्थकरों की समान शक्ति होने पर भी शान्तिनाथ शान्ति के कर्ता हैं पार्श्वनाथ रक्षा करने वाले हैं ऐसा भाव होना चल दोष कहलाता है। सम्पर्दर्शन में शंका-कांक्षा आदि अथवा तीन मूढ़ता आदि पच्चीस दोष लगने को मलिन दोष कहते हैं। एवं अपने द्वारा निर्मापित या प्रतिष्ठापित प्रतिमा आदि में यह मन्दिर मेरा है, यह प्रतिमा मेरी है इत्यादि प्रकार का भाव होना अवगाढ़ दोष कहलाता है।

5. आयु कर्म के चार भेद - नरकायु, तिर्यज्च आयु, मनुष्यायु एवं देव आयु हैं। जिस कर्म के उदय से यह जीव निश्चित समय तक नरक, तिर्यज्च, मनुष्य और देव की पर्याय में (शरीर में) रुका रहे उसे उस पर्याय सम्बन्धी आयुकर्म कहते हैं।

6. नाम कर्म के तिरानवे भेद- नाम कर्म के पिण्ड प्रकृति की अपेक्षा व्यालीस भेद एवं सामान्य अपेक्षा से तिरानवे भेद होते हैं। गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्ण्य, अगुरुलघु, उपधात, परधात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास और विहायोगति तथा प्रतिपक्ष प्रकृतियों के साथ साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर, स्थावर और त्रस, दुर्भग-सुभग, दुस्वर-सुस्वर, अशुभ-शुभ, बादर-सूक्ष्म, अपर्याप्त-पर्याप्त, अस्थिर-स्थिर, अनादेय-आदेय, अयशः कीर्ति, यशः कीर्ति एवं तीर्थकर ये व्यालीस भेद हैं। गति आदि के उत्तर भेदों को मिलाने पर तिरानवे भेद हो जाते हैं।

० जिस कर्म के उदय से जीव भवान्तर को जाता है वह गति नाम कर्म है। यह चार प्रकार का - नरकगति, तिर्यज्च गति, मनुष्य गति एवं देव गति है। जिस कर्म के उदय से आत्मा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पञ्चेन्द्रिय जाति में जन्म लेता है वह पाँच प्रकार का एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पञ्चेन्द्रिय जाति नाम कर्म है। जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर की रचना होती है वह शरीर नाम कर्म है। वह पाँच प्रकार का है - औदारिक शरीर नाम कर्म, वैक्रियक शरीर नाम कर्म, आहारक शरीर नाम कर्म, तैजस शरीर और कार्मण शरीर नाम कर्म है। इन शरीरों का वर्णन आगे के अध्याय में किया जाएगा। जिस कर्म

के उदय से अंग-उपांगों की रचना होती है उसे अंगोपांग नाम कर्म कहते हैं। इसके तीन भेद हैं :- औदारिक शरीर अंगोपांग, वैक्रियक शरीर अंगोपांग एवं आहारक शरीर अंगोपांग। जिस कर्म के उदय से शरीर में अंग उपांगों की यथा स्थान, यथा आकार रचना होती है उसे निर्माण नाम कर्म कहते हैं। शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुए पुद्गलों का अन्योन्य प्रदेश संश्लेष (बन्धन रूप अवस्था) जिसके निमित्त से होती है, वह बन्धन नाम कर्म हैं। औदारिक शरीरादि की अपेक्षा इसके भी पाँच भेद हो जाते हैं। जिस कर्म के उदय से शरीर के परमाणु परस्पर छिद्र रहित होकर मिले उसे संघात नाम कर्म कहते हैं। इसके भी औदारिक शरीर संघात आदि पाँच भेद हैं। जिसके उदय से शरीर की आकृति बनती है उसे संस्थान नाम कर्म कहते हैं। इसके 6 भेद हैं - 1. समचतुरस्र संस्थान, 2. न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान, 3. स्वाति संस्थान, 4. कुञ्जक संस्थान, 5. वामन संस्थान, 6. हुण्डक संस्थान। जिसके उदय से शरीर सुन्दर और सुडौल होता है उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं। जिसके उदय से शरीर वट वृक्ष की तरह नीचे से पतला और ऊपर से मोटा हो उसे न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान कहते हैं। जिसके उदय से शरीर सर्पकी बाँबी की तरह नीचे मोटा (नाभि के नीचे) तथा ऊपर पतला हो उसे स्वाति संस्थान कहते हैं। जिसके उदय से जीव का शरीर कुबड़ा हो उसे कुञ्जक संस्थान कहते हैं। जिसके उदय से शरीर बौना हो उसे वामन संस्थान कहते हैं। जिसके उदय से शरीर किसी खास आकृति का न होकर विरूप (टेढ़ा-मेढ़ा) हो उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से शरीर के अन्दर संहनन - हड्डी की रचना तथा अस्थियों का बन्धन विशेष होता है वह संहनन नाम कर्म है।

इसके 6 भेद हैं - 1. वज्रवृषभनाराच संहनन, 2. वज्रनाराच संहनन, 3. नाराच संहनन, 4. अर्द्धनाराच संहनन, 5. कीलिक संहन, 6. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन। जिस कर्म के उदय से वृषभ (वेष्टन) नाराच (कील) और संहनन (हड्डियाँ) वज्र की हों उसे वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं। जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड़, वज्र की कीलियाँ हो परन्तु वेष्टन वज्र का न हो वह वज्र नाराच संहनन है। जिस कर्म के उदय से सामान्य वेष्टन और कीली सहित हाड़ हो उसे नाराच संहनन कहते हैं। जिसके उदय से हड्डियों की संधियाँ अर्द्धकीलित हों उसे अर्द्धनाराच संहनन कहते हैं। जिसके उदय से हड्डियाँ परस्पर कीलित हों उसे कीलक संहनन कहते हैं। और जिसके उदय से जुदी-जुदी हड्डियाँ नसों से बंधी हुई हों, परस्पर कीलित नहीं हों उसे असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन कहते हैं।

जिसके उदय से शरीर में स्निग्ध-रुक्ष आदि स्पर्श हो, उसे स्पर्श नाम कर्म कहते हैं। इसके आठ भेद हैं - 1. स्निग्ध, 2. रुक्ष, 3. कोमल, 4. कठोर, 5. हल्का, 6. भारी, 7. शीत और 8. उष्ण। जिसके उदय से शरीर में खट्टा-मीठा आदि रस हो उसे रस नाम कर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं - 1. खट्टा 2. मीठा, 3. कडुआ, 4. कषायला और 5. चरपरा। जिसके उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न हो उसे गन्ध नाम कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं - 1. सुगन्ध, 2. दुर्गन्ध। जिसके उदय से शरीर में काला-पीला आदि वर्ण उत्पन्न हो उसे वर्ण नाम कर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं - 1. काला, 2. पीला, 3. नीला, 4. लाल और 5. सफेद। जिसके उदय से विग्रह गति में आत्म प्रदेशों का आकार पिछले (छोड़े हुए) शरीर के आकार का हो, वह अनुपूर्व नाम कर्म हैं। इसके चार भेद हैं - नरक, तिर्यज्च, मनुष्य एवं देवगत्यानुपूर्व। जैसे कोई मनुष्य मरकर देवगति में जा रहा है तो देवगत्यानुपूर्व कर्म के उदय से विग्रह गति में मनुष्य का आकार बना रहेगा। इसका उदय विग्रह गति में ही होता है। जिस कर्म के उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो लोहे के गोले के समान भारी और अर्क के तूल के समान हल्का न हो उसे अगुरुलघु नाम कर्म कहते हैं। जिससे उदय से अपना ही घात करने वाले अंगोपांग हों उसे उपघात नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से दूसरों का घात करने वाले अंगोपांग हों उसे परघात नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से ऐसा भास्वर शरीर प्राप्त हो जिसका मूल ठण्डा और प्रभा उष्ण हो उसे आतप नाम कर्म कहते हैं। इसका उदय सूर्य के विमान में रहने वाले बादर पृथ्वीकायिक जीवों के होता है। जिसके उदय से ऐसा भास्वर शरीर प्राप्त हो जिसका मूल और प्रभा दोनों शीतल हों उद्योत नाम कर्म कहलाता है। इसका उदय चन्द्र विमान में रहने वाले बादर पृथ्वीकायिक तथा जुगनू आदि के होता है। जिसके उदय से श्वासोच्छ्वास चलता है उसे उच्छ्वास नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से आकाश में गमन हो उसे विहायोगति नाम कर्म कहते हैं। इसके दो भेद प्रशस्त

● उपदेश करने वाले के शब्द चाहे जितने रहस्य भरें हों पर यदि वह उपदेश स्वयं उपदेशक पर असरन करें, उसकी उस पर नजर न हो, तो कभी उसका असर दूसरों पर नहीं पड़ सकता।

● एक सफल व्यापारी से सफलता का कारण पूछा - उसने जबाब दिया, सही निर्णय (दो शब्द)। सही निर्णय लेने की शक्ति एक शब्द से अनुभव, अनुभव मिला दो शब्द से वे हैं 'गलत निर्णय'।

विहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति। इसका उदय मात्र पक्षियों के ही नहीं होता अन्य जीवों के भी होता है। जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जिसका एक जीव ही स्वामी हो उसे प्रत्येक शरीर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जिसके अनेक स्वामी हों। इसका उदय वनस्पति कायिक जीव के ही होता है उसे साधारण शरीर कहते हैं। जिसके उदय से द्विन्द्रियादि जाति में जन्म हो उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से एकेन्द्रिय जाति में जन्म हो उसे स्थावर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से विशेष रूपादि गुणों से रहित होते हुए भी जीव अन्य जनों के प्रीति स्नेह का पात्र बनता है वह सुभग नाम कर्म है। जिसके उदय से रूपादि गुणों से सहित होते हुए भी अन्य जनों के प्रीति, स्नेह का पात्र न बन सके, लोग द्वेष गलानि करे वह दुर्भग नाम कर्म है। जिसके उदय से जीव को अच्छा स्वर प्राप्त होता है उसे सुखर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से अच्छा स्वर न हो उसे दुःखर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर हों उसे शुभ नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो न किसी से रुके और न किसी को रोक सके उसे सूक्ष्म नाम कर्म कहते हैं। यह शरीर एकेन्द्रिय जीवों के ही होता है। जिसके उदय से ऐसा शरीर हो जो स्वयं किसी से रुके तथा किसी को रोक सके उस बादर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन छह पर्याप्तियों की यथायोग्य (पर्याय योग्य) पूर्णता हो उसे पर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था हो उसे अपर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं। इसका उदय सम्मूर्च्छन जन्म वाले मनुष्य और तिर्यज्ज्व में होता है। जिसके उदय से शरीर के धातु-उपधातु स्थिर रहें अर्थात् विशेष तप आदि करने पर शरीर कृश न हो उसे स्थिर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर के धातु-उपधातु स्थिर न रहें अर्थात् चलायमान होते रहे वह अस्थिर नाम कर्म है। जिसके उदय से शरीर विशिष्ट कांति से सहित होता है उसे आदेय नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से जीव की संसार में कीर्ति विस्तृत हो उसे यशस्कीर्ति नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से जीव तीर्थकर पद को प्राप्त होता है उसे तीर्थकर नाम कर्म कहते हैं। यह प्रकृति सातिशय पुण्य-प्रकृति है।

7. गोत्र कर्म के दो भेद हैं - 1. उच्च गोत्र, 2. नीच गोत्र। जिसके उदय से लोक प्रसिद्ध उच्चकुलों में जन्म होता है, उच्च आचरण होता है उसे उच्चगोत्र कर्म कहते हैं। जिसके उदय से लोक निन्द्य नीच कुलों में जन्म होता है, नीच आचरण होता है उसे नीच-गोत्र कर्म कहते हैं।

8. अन्तराय कर्म के पाँच भेद हैं - 1. दानान्तराय, 2. लाभान्तराय, 3. भोगान्तराय, 4. उपभोगान्तराय और 5. वीर्यान्तराय। जिस कर्म के उदय से देने की इच्छा करता हुआ भी नहीं दे पाता वह दानान्तराय कर्म है। जिस कर्म के उदय से प्राप्त करने की इच्छा रखता हुआ भी नहीं प्राप्त करता वह लाभान्तराय कर्म है। जिसके उदय से भोगने की इच्छा करता हुआ भी नहीं भोग सकता वह भोगान्तराय कर्म है। जिसके उदय से उपभोग की इच्छा करता हुआ भी उपभोग नहीं कर सकता वह उपभोगान्तराय कर्म है। जिस कर्म के उदय से उत्साहित होने की इच्छा रखता हुआ भी उत्साहित नहीं होता है वह वीर्यान्तराय कर्म है।

मेहनत की,
अब भाग्य संवारो,
कल देखा क्या ?

कल की चिंता,
वर्तमान को खोया,
खाली दो हाथ ।

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान् तुम्हारे चरणों में।
यह विनती है पल-पल क्षण-क्षण, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा.....

चाहे बैरी कुल संसार बने, चाहे जीवन मेरा भार बने।
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा.....

चाहे अग्नि में मुझे जलना पड़े, चाहे काँटों पे मुझे चलना पड़े।
चाहे छोड़ के देश निकलना पड़े, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा.....

जिह्वा पर तेरा नाम रहे, तेरा ध्यान सुबह और शाम रहें।
तेरी याद तो आठों याम रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा.....

चाहे संकट ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अंधेरा हो।
पर मन नहीं मेरा डगमग हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा.....

निश्चिन मैं दीप जलाता हूँ, फिर भी मन में क्यों अंधेरा है। प्रभु
ज्ञानदीप हमको दे दो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा.....

प्रभु भव सिंधु के खिवैया तुम, इस भव से पार लगा दो तुम।
स्वीकार करो आरति मेरी, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान् तुम्हारे चरणों में।

पाठ्यक्रम - २०

२०ब

आत्मिक उन्नति के सोपान - दश धर्म

जो प्राणियों को संसार के दुःख से उठाकर उत्तम सुख (वीतराग सुख) में धरता है उसे धर्म कहते हैं। यहाँ पर उत्तम क्षमादि रूप दश प्रकार का धर्म कहा गया है-

- | | | | |
|------------------------|----------------------|----------------------------|---------------------|
| १. उत्तम क्षमा धर्म | २. उत्तम मार्दव धर्म | ३. उत्तम आर्जव धर्म | ४. उत्तम शौच धर्म |
| ५. उत्तम सत्य धर्म | ६. उत्तम संयम धर्म | ७. उत्तम तप धर्म | ८. उत्तम त्याग धर्म |
| ९. उत्तम आकिंचन्य धर्म | | १०. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म। | |

१. क्रोध उत्पन्न होने के साक्षात् बाहरी कारण मिलने पर तथा अपराधी के प्रति प्रतिकार करने की क्षमता होने पर भी क्रोध न करना, उस पर क्षमा भाव रखना उत्तम क्षमा धर्म है। क्षमा धर्म के पालनार्थ निम्न भावना भानी चाहिए-

- अ. यदि अविद्यमान दोषों को कह रहा है तो वह अज्ञानी है अतः उस पर क्षमा धारण करना चाहिए।
 ब. यदि विद्यमान दोषों को कह रहा है तो वह उपकारी है, वह मेरे दोष मुझे बताकर, दोष रहित होने की ओर प्रेरित कर रहा है।

२. मृदुता, नम्रता का होना मार्दव है, श्रेष्ठ कुल, जाति, रूप, तप, बुद्धि, व्रत, आज्ञा-ऐश्वर्यादि होने पर भी घमंड नहीं करना उत्तम मार्दव धर्म है। मार्दव धर्म के पालनार्थ निम्न भावना भानी चाहिए-

- अ. मैं इस संसार में अनेक बार नीच कुल, नीच अवस्थाओं को प्राप्त कर चुका हूँ।
 ब. मुझसे भी श्रेष्ठ कुल वाले, श्रेष्ठ रूपवान आदि लोग इस जगत में भरे पड़े हैं।
 स. बाहरी वैभव, शरीरादि सब पूर्व पुण्य के उदय से प्राप्त हैं परन्तु ये सभी पदार्थ अनित्य, शीघ्र ही नष्ट होने वाले हैं।
 द. मान कषाय इह लोक व परलोक सभी जगह दुःख देने वाली है।

३. ऋजुता, सरलता का होना आर्जव है। कुटिलता पूर्वक मन, वचन, काय की प्रवृत्ति नहीं करना। छल-कपट नहीं करना, अपने दोष नहीं छिपाना उत्तम आर्जव धर्म है। आर्जव धर्म के पालनार्थ निम्न भावनाएँ भानी चाहिए-

- अ. सैकड़ों उपाय कर के छुपाया दोष भी कालान्तर में प्रगट हो ही जाता है।
 ब. यश, वैभव आदि छल-कपट से नहीं अपितु पूर्व पुण्य से प्राप्त होते हैं।
 स. मायाचार दुर्गतियों का कारण है।

४. निर्लोभता, संतोष रूप परिणाम का होना उत्तम शौच धर्म है। समभाव और संतोष रूपी जल तृष्णा और लोभ रूपी मल को धोने वाला, भोजनादि के प्रति गृद्धता का अभाव रूप शौच धर्म है। शौच धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-

- अ. पुण्य रहित मनुष्य को लोभ करने पर भी इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है।
 ब. अनन्त बार ग्रहण कर धनादिकों का त्याग कर चुका हूँ अथवा वह स्वयं ही छूट चुका है।

स. यह लोभ सदगुणों को दूर भगाने में कारण है तथा नरकादि दुर्गतियों में ले जाने वाला, अनेक दुःखों की बीज भूत है।
 ५. अच्छे पुरुषों के साथ साधु वचन बोलना अथवा दूसरों को कष्ट न हो ऐसे अपने व दूसरों का हित करने वाले वचनों को बोलना उत्तम सत्य धर्म है। यदि कदाचित सत्य वचन बोलने में बाधा प्रतीत हो तो मौन रहना उचित है। सत्य धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-

- अ. सभी गुण, सम्पदाएँ सत्य वक्ता में प्रतिष्ठित होती हैं।
 ब. झूट के बोलने वाले का कोई मित्र नहीं होता, सभी जगह उसका तिरस्कार होता है।
 स. असत्यवादी इस लोक में जिह्वा छेद आदि दुःखों को एवं परलोक अशुभ गति, मूकता आदि को प्राप्त होता है।
 ६. सम्यक् रूप से यम अर्थात् नियन्त्रण सो संयम है। पृथ्वीकायिक आदि पंचस्थावर एवं त्रस कायिक जीवों की विराधना, हिंसा नहीं करना तथा पाँच इन्द्रिय और मन को वश में रखना उत्तम संयम धर्म है। संयम धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-

- अ. असंयमी निरन्तर हिंसा आदि व्यापारों में लिप्त होने से अशुभ कर्मों का संचय करता है।
 ब. संयम के बिना स्वर्ग-मोक्ष आदि की संपदा नहीं मिल सकती है।
 स. संयम योग्य पर्याय की दुर्लभता का चिंतन।
७. कर्म क्षय के लिए, अन्तरंग में समता भाव धारण करते हुए, विवेक पूर्वक (शक्ति के अनुसार) बाह्य -अभ्यन्तर तपों को धारण करना उत्तम तप धर्म है। तप धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-
 अ. तप के द्वारा ही पूर्व संचित कर्म नष्ट हो सकते हैं।
 ब. तप के द्वारा सहिष्णुता, परीषह जय आदि गुणों की प्राप्ति होती है।
 स. अभ्यन्तर एवं बहिरंग शुद्धि का मूल कारण तप है।
८. आत्मा के विकारी भावों का परित्याग करने के लिए प्रयत्न करना एवं चौदह प्रकार के अंतरंग तथा दस प्रकार के बाह्य परिग्रह का त्याग करना अथवा अपेक्षा रहित ज्ञान दानादि का देना उत्तम त्याग धर्म है। त्याग धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-
 अ. त्याग ही समस्त आकुलता, संकल्प-विकल्प को नष्ट करने का साधन है।
 ब. त्याग को स्वीकार किए बिना मुक्ति संभव नहीं।
 स. विषय कषाय एवं परिग्रह का त्याग करने वाला बड़े-बड़े राजा महाराजा तथा इन्द्रों के द्वारा भी पूज्य हो जाता है।
९. शरीर एवं बाह्य पदार्थों के प्रति ममत्व न रखते हुए स्व तत्त्व (आत्म तत्त्व) में उपादेय बुद्धि रखना उत्तम आकिंचन्य धर्म है। आकिंचन्य धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-
 अ. जब निरन्तर पाल-पोष कर पुष्ट किया यह शरीर भी मेरा नहीं है तो अन्य पदार्थ मेरे कैसे हो सकते हैं।
 ब. जीव अकेला ही जन्मता-मरता, सुख-दुःख का भोक्ता होता है।
 स. मैं शाश्वत्, अजर-अमर, सुख स्वभाव वाला हूँ।
१०. मानुषी, देवी, तिर्यज्जनी और अचेतन (चित्र, काष्ठादि में निर्मित) इन चारों प्रकार की स्त्रियों के संसर्ग से सर्वथा मुक्त होकर, त्रिकाली, शुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव वाली निज आत्मा में रमण करना उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है। ब्रह्मचर्य धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-
 अ. श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य ही सर्व ऋद्धि-सिद्धि को देने वाला है।
 ब. स्त्री संसर्ग से उत्पन्न दोष एवं शरीर की अशुचिता का चिंतन करें।
 स. इन्द्रिय सुख की नश्वरता एवं अतीन्द्रिय सुख शाश्वतता का विचार करें।

चौथी ढाल

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान ।
 स्वपर अर्थं बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान ॥१॥
 सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ ।
 लक्षणं श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ ॥
 सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई ।
 युगपद् होते हूँ, प्रकाश दीपक तैं होई ॥२॥
 तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिन माँहीं ।
 मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मन तैं उपजाहीं ॥
 अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देश प्रतच्छा ।
 द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानैं जिय स्वच्छ ॥३॥
 सकल द्रव्य के गुन अनन्त, परजाय अनन्ता ।
 जानै एकै काल प्रगट, केवलि भगवन्ता ॥
 ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण ।
 इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण ॥४॥

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झाँरैं जे ।
 ज्ञानी के छिन माँहिं, त्रिगुप्ति तैं सहज टैरैं ते ॥
 मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो ।
 पै निज आत्म-ज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ ॥५॥
 तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै ।
 संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै ॥
 यह मानुष परजाय, सुकुल सुनिवौ जिनवाणी ।
 इहविधि गये न मिले, सुमणि ज्यों उदधि समानी ॥६॥
 धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै ।
 ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै ॥
 तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बग्बान्यो ।
 कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो ॥७॥

सावधान! यह दुनियाँ रो कर पूछती है
 और हँसकर उड़ाती है।

पाँचवीं ढाल (बारह भावना)

जे पूरब शिव गये, जाहिं अब आगे जैहें ।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं ॥
विषय-चाह दव दाह, जगत-जन अरनि दझावै ।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनधान बुझावै ॥८ ॥
पुण्य-पाप फल माँहिं, हरख बिलखौ मत भाई ।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई ॥
लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लावो ।
तोरि सकल जग-दन्द, फन्द, निज आतम ध्यावो ॥९ ॥

सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ चारित लीजै ।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै ॥
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न संहारै ।
पर-वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै ॥१० ॥

जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता ।
निज वनिता बिन सकल, नारि सौं रहै विरत्ता ॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै ।
दशदिशि गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै ॥११ ॥

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा ।
गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा ॥
काहू की धन-हानि, किसी जय-हार न चिन्तै ।
देय न सो उपदेश, होय अघ वनिज कृषीतें ॥१२ ॥

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै ।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै ॥
राग-द्वेष करतार कथा, कबहूं न सुनीजै ।
औरहु अनरथदण्ड, हेतु अघ तिन्हें न कीजै ॥१३ ॥

धर उर समता भाव, सदा सामायिक करिये ।
परव चतुष्टय माँहिं, पाप तजि प्रोष्ठध धरिये ॥
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै ।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै ॥१४ ॥

बारह व्रत के अतिचार, पन पन न लगावै ।
मरण समय सन्यास धारि, तसु दोष नशावै ॥
यौं श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै ।
तहत्तैं चय नर जन्म पाय, मुनि है शिव जावै ॥१५ ॥

● बेटे के लिये गाड़ी के चार लाख बैंक में जमा कर देना, पर जब पेट्रोल खरीदने की क्षमता आ जाए तब गाड़ी दिला देना ।

रूपवान राजा

इन्द्र की सभा चल रही थी कि इन्द्र ने कहा अगर मनुष्यों में किसी का रूप सौन्दर्य देखना है तो सनत चक्रवर्ती का रूप देखो। उनके रूप के समक्ष हम देवों का भी रूप फीका लगने लगता है। इस बात को सुनने वाले दो देवों के मन में विश्वास नहीं हुआ। अतः उन्होंने सोचा क्यों न हम स्वयं धरती पर जाकर नेत्रों से साक्षात् चक्रवर्ती का रूप देख लें। ऐसा निर्णय कर दोनों राजा के राज्य में पहुँचे।

उस समय सनतकुमार व्यायामशाला में लाल मिट्टी में अभ्यास कर रहे थे। जैसे ही देवों ने रूप देखा तो सहज ही कह उठे - वास्तव में जैसा सुना था उससे कई गुना अधिक सुन्दर रूप धन्य है। यह शब्द जैसे ही चक्रवर्ती के कानों तक पहुँचे उसने पलटकर देखा तो पूछा आप लोग कौन हैं कहाँ से आए हैं? उन देवों ने अपने आने का कारण बतला दिया। तब वह चक्री बोले अरे अभी तो मैं तालीम कर रहा हूँ यदि मेरा सही रूप देखना है तो दरबार में पहुँचना तब तक मैं स्नानादि कार्यों से निवृत्त हो वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर पहुँचता हूँ। देवों ने कहा ठीक है हम वहाँ भी शीघ्र ही पहुँचेंगे।

कुछ समय बाद राजदरबार में सिंहासन पर बैठे हुए सनतकुमार चक्रवर्ती को देखने पुनः देव पहुँचे, रूप देखा तथा नाक सिकोड़ते हुए, मुण्डी हिला दी और कहने लगे अब वह सौन्दर्य कहाँ जो पहले था। राजा ने पूछा क्यों क्या बात है? क्या तुम्हें मेरा यह रूप पसंद नहीं आया? वे बोले राजन् अब वह सौन्दर्य कहाँ, पल-पल परिवर्तित होती सृष्टि में कुछ भी तो स्थिर नहीं है। आप एक स्वर्ण का थाल बुलवाएँ। थाल बुलवाया गया। देवों ने कहा-इसमें थूककर देखो। राजा ने थूका तो उस थूक में सैकड़ों कीड़े बिलबिलाने लगे। देवों ने कहा-हे राजन् यह काया कुछ रोगों से ग्रसित हो गई है अब क्षण-क्षण यह सौन्दर्य नष्ट होता जा रहा है। ऐसा कहकर देव वहाँ से वापस चले गए और राजा विचारने लगा, अरे! अरे जिस देह को लेकर मैं अभिमान करता था, निरन्तर इसके पालन-पोषण में लगा रहता था, फिर भी यह देह रोगी हो गई। सही ही कहा है-“दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावे।” राजा विचार करने लगा मुझे कुछ ऐसा करना चाहिए जिससे देह में विराजित शाश्वत चेतना आत्मा का उद्धार हो सके। ऐसा विचार कर अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर उसने मुनि दीक्षा अंगीकार कर ली।

पुनः एक दिवस स्वर्ग में इन्द्र ने कहा-यदि साधु की निरीहता और तप की श्रेष्ठता का दर्शन करना हो तो सनतकुमार मुनिराज को देखना चाहिए। पुनः वहीं बैठे उन दोनों देवों के मन में आया इन्द्र जी कैसी बातें कर रहे हैं। समझ नहीं आता चलो धरती पर चलकर परीक्षा कर लेते हैं। अतः वे वैद्य का रूप बनाकर उस स्थान पर पहुँच गए जहाँ सनतकुमार मुनिराज ध्यान अवस्था में बैठे हुए थे। वे जोर-जोर से आवाज करने लगे दवाई ले लो, दवाई ले लो हर रोग की रामबाण औषधि, एक बार लगाओ, रोग दूर भगाओ। ऐसा बार-बार कहते हुए वे वहाँ घूमने लगे। कुछ देर बाद मुनिराज ने आँखें खोली तो उन्हें वहीं वहीं घूमते देख पास बुला लिया। वे सोचने लगे हमारा काम तो हो गया। वे उनके पास रुक गए और कहने लगे हम वैद्य हैं आपके शरीर में कुछ रोग है ऐसा देखकर हम रुक गए, हमारे पास ऐसी दवा है जिसे लगाते ही क्षणभर में सारा रोग दूर हो जाएगा। आप कहें तो शीघ्र ही उपचार प्रारम्भ किया जावे। तब मुनिराज बोले-भैया दवा तो मुझे भी चाहिए लेकिन इस रोग की नहीं। दूसरा जो भयंकर रोग है उसकी हो तो बताओ। बताइये महाराज कौन-सा रोग? हमारे पास तो सभी रोगों की दवाई है। तब मुनिराज बोले-अनादिकाल से हमारे साथ जन्म, जरा और मृत्यु रोग लगा है उसकी दवाई हो तो बताएँ। क्योंकि शरीर का रोग तो कर्माश्रित है और शरीर छूटते ही छूट जाएगा। किन्तु ये तीनों रोगों का नाश करने की दवा बताएँ तो अच्छा होगा। इतना सुनते ही दोनों देव हाथ जोड़कर खड़े हो गए और कहने लगे महाराज इस रोग की दवा तो आपके ही पास है हम जैसों के पास कहाँ। हमें क्षमा करें, हम आपकी परीक्षा लेने आए थे। धन्य हैं आप, आपकी निरीहता और आपका तप। ऐसा कहकर देव जय जयकार करते हुए वापस चले गए। आत्मसाधना में लीन होकर सनतकुमार मुनि ने कुछ ही दिनों में समस्त कर्मों को नाश कर मुक्ति का लाभ प्राप्त किया।